P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9* May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

मौर्यकाल में कृषि एवं पशुपालन

प्रेरणा माहेश्वरी
सह–आचार्य,
इतिहास विभाग,
राजकीय डूंगर महाविद्यालय,
बीकानेर, राजस्थान, भारत

सारांश

प्राचीनकाल से समाज का उत्कर्ष मनुष्य के आर्थिक जीवन की संपन्नता और सुख सुविधा पर निर्भर रहा है। यह सही है कि समय–समय पर मनुष्य के आर्थिक कार्यक्रम उसकी आवश्यकताओं के अनुसार घटते और बढ़ते रहते थे और आवश्यकतानुसार परिवर्तित भी होते रहे परन्तु आर्थिक जीवन का मूल आधार कृषि रहा है। मौर्यकाल में राज्य द्वारा नियंत्रित अर्थव्यवस्था का अभूतपूर्व विकास हुआ जिसके दो मुख्य आधार कृषि एवं पशुपालन रहे। मौर्य शासकों ने राजतंत्र की समृद्धि में वृद्धि करने के लिए कृषि अर्थतंत्र का विकास करना अपना चरम लक्ष्य बनाया। राज्य की देखभाल और संरक्षण में विशाल कृषि फार्म संगठित किए गए। विशाल राजकीय फार्मो में दासों, बंदियों, कर्मकरों, दस्तकारों तथा दैनिक वेतन पर कार्य करने वाले व्यक्तियों की अपार वाहिनी काम करती थी। पशुपालन मौर्य साम्राज्य की स्थापना से पहले भी था परन्तु वह केवल कौटुम्बिक अर्थव्यवस्था का था और किसी कबीला विशेष के आर्थिक जीवन मात्र को प्रभावित करता था। मौर्यकाल में सर्वप्रथम कई कई सौ किलोमीटर लम्बे चौड़े चरागाहों की स्थापना करके एक–एक फार्म में हजारों पशुओं का पालन कर उसे आय का महत्वपूर्ण स्त्रोत बनाया गया। इस प्रकार योजनाबद्ध ढंग से कृषि एवं पशुपालन का विकास कर आर्थिक पुनर्निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया गया।

मुख्य शब्द : विवीताध्यक्ष, सीताध्यक्ष, जूनागढ अभिलेख, ब्रह्मदेय।

प्रस्तावना

ईसा पूर्व चतुर्थ शताब्दी का भारतीय इतिहास में विशेष महत्व है। राजनीतिक एकीकरण का वह कार्य जिसे हर्यक वंशीय शासकों ने आरंभ किया,उसे मौर्य वंश के शासकों ने पूर्णता प्रदान की और लगभग संपूर्ण भारत पर अधिकार कर भारत में पहली बार राजनीतिक एकता की स्थापना की। इसी राजनीतिक एकता एवं स्थिरता ने देश की आर्थिक प्रगति एवं विकास में निर्णायक भूमिका निभाई। मौर्यकालीन भारत का मुख्य आर्थिक आधार कृषि था। मेगस्थनीज के अनुसार भारतीय सात जातियों में किसान का दूसरा दर्जा था।[1] वे स्वभाव के सीधे और सज्जन होते थे और सैनिक सेवा से मुक्त होते थे। आसपास की लड़ाइयों में सेनाएं इस वर्ग को हानि नहीं पहुंचाती थी।[2] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कृषि पर विस्तार से वर्णन मिलता है। अर्थशास्त्र के अनुसार नए गांव आबाद करने के लिए या तो विदेशियों को आकर बसने के लिए प्रलोभन दिया गया[3] या घनी आबादी वाले स्थानों से अतिरिक्त जनसंख्या को नए आबाद इलाकों में बसाया गया।[4] घनी जनसंख्या वाले नगरों और विजित इलाकों से निर्वासित शूद्रों ने बंजर भूमि पर नए गांव आबाद किए। शूद्रों तथा किसानों के अतिरिक्त आचार्य, पुरोहित एंव राज्य तथा समाज के प्रतिष्ठित महानुभावों को यहां बसने के लिए स्थान एवं सुविधाएं दी जाती थी। ब्राह्मणों को दी जाने वाली भूमि कर से मुक्त रखी जाती थी और शेष अधिकारियों को दी गई भूमि पर कर लिया जाता था एवं उन्हें अपनी भूमि बेचने गिरवी रखने और नष्ट करने का अधिकार नहीं था।[5] जो किसान खेती करने का वादा करके भूमि ले लेते थे और फिर खेती नहीं करते थे उन्हें हरजाना अदा करना पड़ता था। नये जनपद में खेती प्रारम्भ करने वाले किसानों को राज्य की ओर पशु, बीज, धन और दूसरी सुविधाएं दी जाती थी जिन्हें वे अपनी सुविधा के अनुसार धीरे–धीरे लौटा देते थे।[6] जो भूमि जोतने के योग्य नहीं होती थी,उस पर राजा गाय, भैंस आदि पशुओं के लिए तृण (घास) एवं जल आदि से संपन्न गोचारण क्षेत्र का निर्माण करा देता था। ऐसी कृषि के अयोग्य भूमि पर ही राजा एक गोरूत (चार कोस) परिमित ब्रह्मारण्य (वेदाध्ययनोपयोगी वन) तथा सोमारण्य (सोमयज्ञ के लिए उपयोगी वन) बनाने के लिए ब्राह्मणों को दे देता था। उस वन में वृक्षादि स्थावर एवं मृगादि जंगम जीवों को अभयदान मिलता था।[7] गोचर भूमि का अधिकारी विवीताध्यक्ष कहलाता था।[8]

साहित्यावलोकन

मौर्यकाल में कृषि एवं पशुपालन विषय पर लिखे गए साहित्य का अवलोकन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया गया है–

प्रो. इरफान हबीब एवं प्रो. वी.के.झा

"मौर्यान इंडिया" (2015) नामक पुस्तक में सिकन्दर के आक्रमण एवं मौर्य साम्राज्य के इतिहास (324ई.पू.–185) को शामिल किया गया है। विभिन्न पुरातात्विक एवं पुरालेखीय स्त्रोतों के आधार पर मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था, समाज एवं संस्कृति का वर्णन किया गया है। मौर्य कालक्रम, अर्थशास्त्र की तिथि, पुरालेखीय विज्ञान एवं प्राकृत लिपि पर विशेष टिप्पणियां लिखी गई है।

राधाकुमुद मुकर्जी

"चंद्रगुप्त मौर्य एंड हिज टाईम्स" (2016) में चंद्रगुप्त मौर्य और उसके प्रशासन का विस्तृत विवरण दिया गया है। प्रशासन के लगभग सभी पहलूओं–राजा, मंत्रियों, सेवानियमों, प्रशासकीय विभागों, भूव्यवस्था, कानून केस्त्रोत, न्यायिक व्यवस्था को शामिल किया गया है। तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति की विस्तृत व्याख्या की गई है।

कौटिल्य

कौटिलीयं : अर्थशास्त्रम् (हिन्दी टीका–प. रामतेज शास्त्री–2017) में मौर्यकालीन प्रशासन, समाज, अर्थव्यवस्था इत्यादि का विस्तृत वर्णन मिलता है। आर्थिक गतिविधियों के संचालन हेतु राज्य द्वारा अनेक अध्यक्षों को नियुक्त किया गया जो कृषि, व्यापार एवं वाणिज्य, वजन एवं माप, खनन आदि को नियंत्रित करते थे। राज्य ने कृषिकर्मियों के लाभ के लिए सिंचाई एवं जलापूर्ति सुविधाएं भी प्रदान की। मौर्यकालीन समाज की एक उल्लेखनीय विशेषता दासों को कृषि में रोजगार देना था।

मेगस्थनीज

मेगास्थिनीज का भारत वर्णन (अनुवाद–रामचंद्र शुक्ल–2018) में मेगस्थनीज ने पांच वर्ष तक मौर्य साम्राज्य में अपने निवास के दौरान जो कुछ देखकर Ta Indica में लिखा, उन अंशों का संकलन मिलता है। मेगस्थनीज ने भारत की भौगोलिक स्थिति, नदियों, भूमि की उर्वरता की जानकारी दी है। उसने भारतीय समाज को सात जातियों में विभाजित किया, जिनमें कृषकों का दूसरी जाति के रूप में वर्णन किया। मेगस्थनीज ने उन अधिकारियों व कर्मचारियों का उल्लेख किया है जो मिस्त्र की तरह भूमि को नापते थे, नदियों का निरीक्षण करते थे एवं उन मुहानों की देखभाल करते थे जिनसे होकर प्रधान नहरों का पानी उनकी शाखाओं में जाता था।

अध्ययन का उद्देश्य

मौर्यकाल के पूर्व कृषि एवं पशुपालन प्रकृत्ति प्रदत्त जीविका साधनों के रूप में स्वीकृत थे। इस काल में पहली बार राजकीय प्रयासों द्वारा विशाल जंगलों को राजकीय एवं व्यक्तिगत खेती के अंतर्गत लाया गया। वृहद् चरागाहों का निर्माण कराया गया जहां राजकीय पशुधन का पालन होता था। इस प्रकार कृषि एवं पशुपालन की एक लाभदायक व्यवस्था का सूत्रपात हुआ।

कृषि पद्धति

मौर्य युग में साल में तीन फसलें पैदा की जाती थी, हैमन (रबी), ग्रैष्मिक (खरीफ) और केदार (जायद)। कर्मकरों और सिंचाई के पानी की उपलब्धि के अनुसार ये तीनों फसलें पैदा करने का प्रयत्न किया जाता था।[9] कैसी भूमि में कौनसी फसल बोई जाए इसका वर्णन भी कौटिल्य ने किया है–

फेनाघात

जो भूमि नदी के जल से जो आप्लावित हो जाती हो उस पर वल्लीफल (खरबूजा, तरबूज, लौकी आदि) बोया जाता था।

परिवाहान्त

जिस भूमि पर सिंचाई होती होउस पर पिप्पली, मृद्वीका (अंगूर) और ईख बोया जाता था।

कूपपर्यन्त

जो भूमि कुओं के समीप स्थित होउस पर शाक और मूल (मूली आदि) बोये जाते थे।

हरणीपर्यन्त

ऐसी भूमि जहां पहले तालाब रहे हों और उनके सूख जाने पर भी गीली रहती हो उस पर हरी फसलें बोयी जाती थी।

क्यारियों की मेड़ों पर सुगन्धि,
भैषज्य आदि के पौधे लगाए जाते थे।[10]

फसलों के प्रकार

अर्थशास्त्र मे विभिन्न अन्नों का भी उल्लेख मिलता है जिनकी खेती की जाती थी–

वर्षा ऋतु के आरंभ में शालि (एक प्रकार का धान), ब्रीहि (चावल) कोद्रव (कोदों का धान), तिल, प्रियडत्गु (कंगनीकाचावल)दारक(संभवतःदाल) और वरक (मोठ) बोये जाते थे।

वर्षा के मध्य में मुद्ग (मूंग), माष (उड़द) और शैव्य (बोडा) बोए जाते थे।

वर्षा ऋतु की समाप्ति हो जाने पर कुसुम्भ (कुसुंवां), मसूर, कुलत्थ (कुल्थी), यव (जौ) गोधूम (गेहूं), कलाथ (चना), अतसी (अलसी) और सर्षप (सरसों) को बोया जाता था।[11]

मेगस्थनीज के अनुसार इस समय संपूर्ण भारत में अनाज,ज्वार,अनेक प्रकार की दालें,चावल, बास्फोरम कहलाने वाला पदार्थ और बहुत से खाद्योपयोगी पौधे उत्पन्न होते थे। यहां वर्ष में दो बार वर्षा होती थी–एक जाड़े में जबकि गेहूँ की बोआई होती थी और दूसरी गरमी के समय जो तिल और ज्वार के बोने की उपयुक्त ऋतु थी। अतः भारत के निवासी वर्ष में दो फसल काटते थे। यदि इनमें से एक फसल बिगड़ भी जाती थी तो लोगों को दूसरी का पूरा विश्वास रहता था। कड़ी गर्मी मूलों को विशेषतः कसेरू को पकाने के लिए उपयुक्त थी।[12]

अर्थशास्त्र में अनेक अन्न, शाक, कन्दमूल–फल आदि का उल्लेख किया गया है। इनमें मरीच, (मिर्च), श्रृंगि बेर (अदरक) गौर सर्षप, (श्वेत सरसों) धनिया, जीरा, नीम्बू, आम, आवँला, बेर, झरबेरी, फालसा, जामुन, कटहल और अनार उल्लेखनीय है।[13] यद्यपि कौटिल्य ने ईख को खेती के लिए निकृष्ट माना है पर उसकी पैदावार कम नहीं थी। ईख के रस से गुड़, मत्स्यण्डिका (दानेदार

चीनी) खण्ड (खाँड) और शर्करा (शक्कर) तैयार किए जाते थे।[14] कौटिल्य ने नींबू, आम आदि फलों के रसों को इक्षु–रस से बने गुड़ आदि को मिलाकर ऐसे शरबत बनाने का उल्लेख किया है जो एक मास, छः मास या एक साल तक कायम रह सके।[15]

अनेक बहुमूल्य वृक्षों का भी उल्लेख मिलता है जैसे शाक (सागौन), तिनिश (तिनास या तिनसुना), धन्वन (धनुवृक्ष अथवा धामिवृक्ष), अर्जुन मधूक (महुआ), तिलक, साल (साखू), शिंशपा (शीशम), अरिमेद (विट्खदिर), राजादन (क्षीरवृक्ष), शिरीष, खैर, सरल, ताल, सर्ज, अश्वकर्ण, सोमवल्क (श्वेत खदिर), कश (लोमशपुच्छ), आम्र, प्रियंक और धववृक्ष।[16]

कृषि से सम्बन्धित अन्य कार्य

वर्तमान समय के समान मौर्ययुग में भी खेती के लिए प्रधानतया हलों और बैलों का ही प्रयोग किया जाता था। कौटिल्य ने लिखा है कि राजकीय भूमि पर बार–बार हल चलवाकर पहले उसे तैयार कराया जाए, फिर दासों, कर्मकरों (श्रमिकों) और दण्ड प्रतिकर्ताओं (कैदियों) द्वारा उस पर बीज बुआयें जाएँ।[17] कर्षण यन्त्र (हल आदि), उपकरण (खेती के लिए आवश्यक अन्य औजार) और बलीवर्दों (बैलों) की कमी के कारण खेती के काम में बाधा न पड़ने पाए।[18]

कृषि कार्य में सहायता के लिए कर्मार, कृट्टाक (कुट्टी काटने वाले) मेदक (कुआं खोदने वाले), रज्जुवर्तक (रस्सी बटने वाले) और सर्पग्राहि (सांप पकड़ने वाले) लोगों का भी बहुत उपयोग था, अतः उनकी कमी के कारण भी खेती को हानि नहीं पहुंचने दी जाती थी।[19] राजकीय भूमि पर खेती करने वाले कर्मकरों को उनके कार्य के अनुसार जहाँ भोजन आदि दिया जाता था, वहां साथ ही सवा पण मासिक वेतन भी दिया जाता था।[20] लुहार, बढ़ई आदि शिल्पियों को भी उनके कार्य के अनुरूप भोजन और वेतन प्रदान किया जाता था।[21]

सीताध्यक्ष

कृषि कर्म के मुख्य अधिकारी को सीताध्यक्ष कहा जाता था। सीताध्यक्ष कृषि शास्त्र, शुल्वशास्त्र (भूमि के गुणदोष बताने वाला शास्त्र) तथा वृक्षायुर्वेद एवं वनस्पति विज्ञान में विशेष योग्यता रखता था और इन योग्यताओं से सम्पन्न अधिकारी उसके सहायक होते थे।[22] सीताध्यक्ष सब प्रकार के अन्न, पुष्प, फल, शाक, कन्द, मूल, वल्लिक्थ (लता से उत्पन्न होने वाले कद्दू–कुम्हड़ा आदि फलशाक), क्षौम (सन–जूट आदि) तथा कपास के बीजों का ठीक समय पर संग्रह करता था। निजी या सरकारी भूमि पर उन बीजों को दासों,वेतनभोगी कर्मचारियों द्वारा बोवाई कराता था।[23]

जिस भूमि पर सीताध्यक्ष का नियंत्रण नहीं था, उस पर करद (भाग देने वाले) कृषक खेती करते थे। कृषि के योग्य तैयार खेतों को किसानों को खेती के लिए दे दिया जाता था पर इन किसानों का भूमि पर अधिकार केवल अपने जीवनकाल के लिए ही होता था। जो भूमि कृषि योग्य न हो, उसे जो लोग खेती के लिए तैयार करें, वह उनसे वापस नहीं ली जाती थी।[24] खेती के लिए जो कृषि योग्य भूमि किसी किसान को दे दी गई हो यदि वह स्वयं उस पर खेती न करे तो उसे उससे लेकर अन्य किसानों को दे दिया जाता था, या उस पर ग्राम भृतकों (ग्राम की सेवा में नियुक्त कर्मकरों) और वैदेहकों (व्यापारियों) द्वारा खेती करायी जाती थी। इस व्यवस्था का प्रयोजन यह था कि राजकीय आमदनी में कमी न होने पाएं। क्योंकि जो व्यक्ति कृषियोग्य भूमि पर खेती नहीं करेगा वह कर की समुचित मात्रा राज्य को नहीं दे सकेगा।[25]

किसानों द्वारा राजा को जलकर भी दिया जाताथा। अपने परिश्रम से खोदे हुए कुएँ या तालाब से घड़े द्वारा जल खींचकर सिंचाई करने वाले किसान फसल का पंचमांश कन्धे पर जल लाकर खेती करने वाले किसान फसल का चतुर्थांश और राजकीय नहर से सिंचाई करने वाले फसल का तृतीयांश राजा को जल कर के रूप में देता था।[26] खेती की उन्नति तथा उत्पादन वृद्धि के प्रति राज्य इतना सचेत था कि यदि किसी किसान का पानी टूट जाने से अथवा उसकी अन्य किसी लापरवाही से दूसरे किसान की फसल खराब हो जाती थी तो उसे राज्य की ओर से दण्ड का भागी समझा जाता था।[27]

उत्कृष्ट फसलों की प्राप्ति के लिए बीजों को तैयार करने एवं विभिन्न खादों के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है। धान्य के बीजों को सात रात ओस में रखा जाता था और दिन में उन्हें सुखाया जाता था। कोशीधान्यों के लिए यही प्रक्रिया तीन दिन तक की जाती थी। ईख की आँखें को खेत में गाड़ने के पूर्व ईख के टुकड़ों के कटे हुए भागों पर मधु, घृत, सुअर की चरबी और गोबर को मिलाकर लगाया जाता था। कन्दों को बोने से पहले उनके छेदों पर मधु और घृत का लेप किया जाता था और बिनौलों को बोने से पूर्व उन्हें गोबर से मल लिया जाता था।[28] आम–कटहल आदि के बीजों को जिस गड्ढे में रोपना होता था, उसमें पहले घास–फूल जलाकर गर्मी पहुँचायी जाती थी और जब इनके रोपने का समय आता था,तब गड्ढे में पशुओं की हड्डी और गोबर डाला जाता था। इस प्रकार बीज बोने पर जब अंकुर निकलते थे तो उन्हें सेहुड़ के दूध में नन्हीं ताजी मछलियॉ डालकर सींचा जाता था।[29]

सभी प्रकार के बीजों को बोने के समय बीज की पहली मुट्ठी स्वर्णसंयुत जल से तर करके ही बोना चाहिए। बोते समय इस मंत्र को पढते थे–"प्रजापति, कश्यप (सूर्यपुत्र) मेघदेव को मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ। कृषिकर्म की अधिष्ठात्री सीता देवी हमारे इस बीज की और धन की वृद्धि करे"।

सिंचाई पद्धति

मौर्य युग में कृषक खेतों की सिंचाई के लिए केवल वर्षा पर ही निर्भर नहीं थे। सिंचाई के अनेक साधन भी विद्यमान थे। कौटिल्य के अनुसार सस्य आदि अन्न का आधार सेतुबन्ध ही है। इस प्रकार सिंचाई वाले खेतों में वे सब लाभ प्राप्त हो जाते है जो कि वर्षा से नित्य सिंचित खेतों में होते है।[30] कौटिल्य ने सिंचाई के अनेक साधनों का उल्लेख किया है–[31]

हस्तप्रावर्तिमम्

हाथ से पानी निकालकर सिंचाई करना। पशुओं और वातयन्त्र आदि को प्रयुक्त किये बिना जब कृषक केवल अपने हाथों द्वारा पानी निकाले तो उसे

हस्तप्रावर्तिमम् कहते थे। उन किसानों से उपज का 1/5 भाग लिया जाता था।

स्कन्धप्रावर्तिमम्

कन्धे का प्रयोग कर सिंचाई करना। चरस द्वारा जब कुओं से पानी निकाला जाता था तो उसके लिये मनुष्यों या पशुओं के कन्धों का सहारा लिया जाता था। इसी को स्कन्धप्रावर्तिमम् कहते थे। ऐसे कृषकों से उपज का 1/4 भाग लिया जाता था।

स्त्रोतयन्त्रप्रावर्तिमम्

रहट एक प्रकार का स्त्रोतयन्त्र होता था जिसे बैल चलाते थे। अर्थशास्त्र में ऐसे रहट को स्त्रोतयन्त्रप्रावर्तिमम् कहा जाता था। इस पद्धति का प्रयोग करने वाले कृषक उपज का 1/3 भूमिकर के रूप में देते थे।

नदीसरस्तटाककूपोद्घाटम्

नदी, तालाब, सर और कूप द्वारा सिंचाई करना। मौर्य काल में नदियों पर बॉध बनाकर नहरें निकालने की प्रथा भी थी। इस पद्धति से सिंचाई करने वाले कृषक उपज का 1/4 भाग प्रदान करते थे।

शक महाक्षत्रप रूद्रदामन प्रथम के जूनागढ अभिलेख से ज्ञात होता है किचंद्रगुप्त मौर्य के गवर्नर पुष्यगुप्त वैश्य ने ऊर्जयत पर्वत से नीचे की ओर बहने वाली सुवर्णसिकता और पलाशिनी नदियों पर बांध बंधवा कर सुदर्शन झील का निर्माण करवाया था। इस बांध के जोड़ इतने मजबूत थे कि उनमें से पानी बिल्कुल नहीं निकल सकता था। अशोक के काल में यवनराज तुषास्फ ने इस जलाशय से बहुत सी नहरें निकलवाई।[32] यह झील सदियों तक कायम रही और बाद में अनेक राजाओं ने इसकी मरम्मत करवाई थी। नदियों पर बनाये गये बॉधों को अर्थशास्त्र में सेतुबन्ध कहा गया है। कौटिल्य ने लिखा है– यदि कोई सेतु के निश्चित मार्ग के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान पानी निकालने का प्रयत्न करे तो उस पर छः पण जुरमाना किया जाए।[33] स्पष्ट है अर्थशास्त्र में सेतु का अभिप्राय ऐसे बॉध से है जो नदियों, सरों और तडागों पर जल को रोकने के लिए बनाया जाता था।

यदि कोई व्यक्ति अपनी ओर से सेतुबन्ध बनवाता था तो पांच वर्ष तक उससे कोई राजकीय कर नहीं लिया जाता था। भग्न हुए सेतुबन्ध की मरम्मत कराने पर चार साल के लिए करों से छूट दी जाती थी।[34]
नदियों,सरों और तडागों पर बॉध बॉधकर सिंचाई के लिए कुल्या बनाए जाने का उल्लेख मिलता है।[35]

यदि किसी सेतुबन्ध का पांच साल तक कोई उपयोग न किया जाए तो उस पर उसके स्वामी का स्वत्व नहीं रह सकता था बशर्ते कि इसका कारण कोई आपत्ति न हो।[36]

जिन व्यक्तियों की भूमि में कोई तडाग स्थित हो,उनके लिए यह आवश्यक था कि वे उनकी भली भांति मरम्मत कराते रहें। ऐसा न करने पर उन्हें इतना दण्ड दिया जाए जो उनके द्वारा की गई उपेक्षा के कारण हुई हानि के दुगुने मूल्य के बराबर हो।

इस प्रकार स्पष्ट है कि तडाग द्वारा सिंचाई की व्यवस्था करने पर जहॉ राज्य टैक्सों की छूट के रूप में अनुग्रह प्रदर्शित करता था, वहां साथ ही सिंचाई के इस महत्वपूर्ण साधन की उपेक्षा करने या उसे किसी प्रकार से हानि पहुँचाने पर दण्ड भी देता था। मौर्य युग में सिंचाई के विभिन्न साधनों की व्यवस्था में राज्य के क्या कर्त्तव्य थे,इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्र से कोई सूचना नहीं मिलती। तडाग प्रायः व्यक्तियों के ही स्वत्त्व में होते थे और वे ही उन पर सेतुबंधों का निर्माण कर सिंचाई की व्यवस्था किया करते थे। राज्य का उनके संबंध में केवल यही कर्त्तव्य था कि नये बांध बनवाने पर,पुराने बांधों की मरम्मत कराने पर और बांधों को बढाने व उन्नत करने पर टैक्सों में छूट देकर उनके स्वामियों को प्रोत्साहित करे,साथ ही तडागों और बांधों की उपेक्षा करने पर उनके स्वामियों को दण्ड दे।

परन्तु वर्षा की भी उपेक्षा नहीं की जाती थी।कौटिल्य ने अन्नोत्पादनयोगिनी वर्षा के परिमाण को स्पष्ट किया है। किस ऋतु में, किन दशाओं में और किन प्रदेशों में कितनी वर्षा होती है इसका ठीक–ठीक ज्ञान प्राप्त कर खेती के लिए उसका उपयोग किया जाता था। वर्षा को मापने के लिए विशेष प्रकार के कुण्ड बनाए जाते थे। जिन्हें कोष्ठागार के सम्मुख रखा जाता था।[37] कुंडों में वर्षा को जो पानी एकत्र हो जाता था उसके आधार पर विभिन्न प्रदेशों में वर्षा की मात्रा की सूचना मिलती है। कौटिल्य के अनुसार –जांगल प्रदेशों में 16 द्रोण, अनूप (खादर) प्रदेशों में 24 द्रोण, अश्मक देश में साढे तेरह द्रोण, अवन्ति देश में 23 द्रोण और अपरान्त प्रदेश (कोंकण) में अपरिमित वर्षा होती है। हिमालय प्रदेश में तथा जहाँ जहाँ नहरों से पानी लाकर सिंचाई की जाती है, उन सभी प्रदेशों में यथोचित सामयिकी वर्षा से फसल का काम चल जाता है।[38]

वर्ष के किस भाग में कितनी वर्षा होनी चाहिए और कब कितनी वर्षा खेती के लिए लाभकर है, इसका भी कौटिल्य ने वर्णन किया हैं वर्ष के चार महीनों अर्थात् श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक में से प्रथम मास अर्थात श्रावण और अंतिम मास कार्तिक इन दोनों महीनों में वर्षा के परिणाम का तृतीयांश और मध्यवर्ती दो महीनों अर्थात् भाद्रपद– आश्विन में कुल वर्षा की आधी बरसात हो जाए तो वर्षा के लिए उस वर्ष को अच्छा कहा जाएगा।[39]

अच्छी वर्षा के लिए ईश्वर से प्रार्थना की जाती थी। इसके साथ ही दुर्भिक्ष से बचाव के लिए अनेक व्यवस्थाएं की जाती थी। कृषकों में बीजों का वितरण किया जाता था। कौटिल्य के अनुसार दुर्भिक्ष से बचाव की व्यवस्था करना राजा का कर्त्तव्य था। उसने सुझाव दिया है कि "संपूर्ण जनपद के साथ ऐसे देश में चला जाए,जहां सस्य की प्रचुरता हो,या समुद्रसर और तडाग का आश्रय ग्रहण करे और वहां धान्य,शाक,मूल और फलों का उत्पादन करे,या मृग, पशु, पक्षी, व्याल और मत्स्यों द्वारा निर्वाह करे।[40] कृषि के विकास हेतु ऐसी विषम परिस्थिति में राजा प्रजा को कर मुक्त कर देता था।

कोष्ठागार

कृषि में उत्पन्न होने वाले सब प्रकार के अन्नों को कोष्ठागाराध्यक्ष ठीक तौल नापकर कोठार में रखवाता था।

अन्न रखने का कोठार किसी ऊॅचे स्थान पर बनवाया जाता था। गुड़ –राब आदि क्षार पदार्थ सुरक्षित रखने का स्थान ठंडा और तृण से आच्छादित होता था। तेल–घी रखने के लिए मिट्टी के कुंड तथा काष्ठ के बने पात्र होते थे। नमक रखने के लिए मिट्टी के बड़े–बड़े बर्तन होते थे।[41] दुर्भिक्ष के समय जनपदवासियों की सहायता के लिए स्नेह वर्ग (घी,तेल,वसा और मज्जा) की वस्तुओं में से आधा भाग सुरक्षित रखा जाता था। आधा भाग राजकीय रसोईघर में उपयोग के लिए खर्च किया जाता था। नई फसल तैयार होने पर पुरानी सामग्री के स्थान पर नई वस्तुएं भर जाती थी। कोष्ठागार के अन्न को पकाकर तैयार करने, छीजन, वृद्धि एवं सही तौल का कार्य कोष्ठागाराध्यक्ष की देखरेख में होता था।

भूमिदान

राजा द्वारा ब्रह्मदेय भूदान का उल्लेख मिलता है। यह भूमि ऋत्विक, आचार्य, पुरोहित और क्षोत्रिय (वेदपाठी) ब्राह्मणों को दी जाती थी। यह भूमि सभी प्रकार के करों से मुक्त थी।(ब्रह्मदेय भूमि को बेचा भी जा सकता था और रहन भी रखा जा सकता था। परन्तु यह ध्यान में रखना होता था कि ब्रह्मदेय भूमि उन्हीं व्यक्तियों के हाथ बेची जाए या रहन रखी जाए,जिन्हें इस प्रकार की भूमि को प्राप्त करने का अधिकार हो।[42]

अन्तपाल दुर्ग के अध्यक्ष,सख्यायक (गणनाकार्य तथा हिसाब किताब रखने वाले), दशग्रामी आदि के अधिकारी गोप, जनपद तथा नगर के चतुर्थांश के अधिकारी स्थानिक,हाथियों को सिखाने में निपुण पुरूष, चिकित्सक, घोड़ों को सिखाने वाले और जंघालक (पैदल दौड़कर दूर देश में संदेश पहुॅचाने वाले) इन सभी लोगों को दण्ड तथा कर से मुक्त माफी की जमीन दी जाती थी। किन्तु इस भूदान को पाने वाले लोग उस भूमि को न बेच सकते थे और न बंधक बना सकते थे। वे केवल उसका भोग करने के अधिकारी थे। जिस क्षेत्र को फसल उत्पादन के योग्य बना लिया जाता था, उसे केवल एक पीढी के लिए पट्टे पर दिया जाता था। किन्तु अकृत भूमि क्षेत्र को किसान उत्पादक बनाता था। उसे राजा बेदखल नहीं करता था और पीढ़ी दर पीढ़ी उस पर किसान का अधिकार होता था।

राजकीय आय में कृषि का योगदान

मौर्य युग में राज्य को भूमि से दो प्रकार की आय होती थी, सीता और भाग।[43]

सीता

जो भूमि राज्य की अपनी संपत्ति हो और जिस पर राज्य की ओर से ही खेती की जाती हो, उसकी आय को सीता कहते थे।

भाग

जिस भूमि पर स्ववीर्योपजीवि (अपने श्रम से स्वतन्त्र रूप से खेती करने वाले) किसान खेती किया करते थे, ये राज्य की सेवा में नहीं होने के कारण कोई वेतन आदि प्राप्त नहीं करते थे, अपितु अपने हानि–लाभ के लिए स्वयं उत्तरदायी होते थे। राज्य उनसे भाग वसूल करता था।[44]

इनके अतिरिक्त फलों–फूलों के उद्यान,शाक सब्जी के बगीचे, नम खेत और मूलवाय(ऐसी फसल के खेत जिनमें जड़ें बोयी जाए, जैसे ईख) से राज्य को जो आय होती थी, उसे सेतु कहते थे।[45]

पशुपालन

यद्यपि अर्थव्यवस्था पर कृषि के प्रभुत्व की स्थापना होती जा रही थी,फिर भी अनेक कारणों से पशुपालन मनुष्यों की जीविका का महत्वपूर्ण साधन था। राज्य की ओर से एक बड़ा अधिकारी पशुपालन की व्यवस्था करता था जिसे गोअध्यक्ष कहते थे। गोअध्यक्ष आठ उपायों से पशुओं की देखरेख करता था–

वेतनोपग्राहिक

इसके अन्तर्गत गोपालक(गौओं की रक्षा करने वाला भृत्य) और पिण्डारक (भैंस पालने वाले), दोहक (दोहने वाले), मन्थक (दही से घी निकालने वाले) और लुब्धक (जंगली जानवरों से उनकी रक्षा करने वाले) सौ गायें तथा सौ भैंस पालते थे[46] जिनके फलस्वरूप राज्य की ओर से नियमित वेतन मिलता था। पशुओं के दूध एवं घी में उनका कोई हिस्सा नहीं समझा जाता था।

कर प्रतिकर

इस पद्धति के अंतर्गत किसी व्यक्ति को पांच प्रकार की गाय और भैंस मिलाकर सौ की संख्या में दी जाती थी जिनमें जरद्गु (वृद्ध गाय), धेनु (दूध देने वाली गाय), गर्भिणी, पष्ठौही (सॉड चाहने वाली) और वात्सरी (दूध छोड़ देने वाली बछिया) सम्मिलित होती थी। ऐसे व्यक्ति गौओं के मालिक को वर्ष में आठ वारक घी,एक पण प्रतिपशु और मरे हुए पशुओं का राजमुद्रांकित चर्मदेते थे।[47]

भग्नोत्सृष्टक

इसके अंतर्गत एक व्यक्ति को बीमार, अंगदिकल, अनन्यदोही (जिसे दूसरा व्यक्ति दोह न सके), दुर्दोहा (कठिनता से दोही जाने वाली) और पुत्रध्नी (जिसके बच्चे मर जाते हो) गायें और भैंसे सौ की संख्या में दी जाती थी। वह व्यक्ति कर प्रतिकर से आधा या तिहाई दूध आदि देकर शेष आय अपने लिए रख लेता था।[48]

भागानुप्रविष्टक

इसके अंतर्गत पशुचोरों के भय से गोपालक अपने पशु चरागाह में छोड़ देते थे और अपनी आय का दसवां भाग चरागाह कर के रूप में राज्य को देते थे।[49]

व्रजपर्यग्र

इस प्रणाली के अंतर्गत राज्य के प्रत्येक पशु का विवरण, उसकी आयु, लिंग, काम तथा शेष सभी ब्यौरे रखे जाते थे।[50]

नष्ट

इसके अंतर्गत उन पशुओं को जिन्हें चोर ले गये हों, या जो दूसरे झुंडों में जा मिले हो या अपने झुंड से बिछड़ गये हों उन्हें सुरक्षित लौटाने का प्रयत्न किया जाता था।[51]

विनष्ट

इसके अंतर्गत दलदल में फंसने वाले, बीमार, बूढे, जल की धारा में बहे हुए, वृक्ष, शिला, लकड़ी आदि के गिरने से घायल,बिजली गिर जाने, हिंसक जानवरों की चपेट में आ जाने वाले पशुओं का उपचार किया जाता था।[52]

क्षीरधृत संजात

इस प्रणाली में गायें और भैंसे किसी व्यक्ति को हिस्से पर पालने के लिए दी जाती थी। जब दूध कम होने लगता था और गाय–भैंस गर्भिणी हो जाती थी तो बच्चा पैदा होने तक रक्षक दूध–घी का मालिक होता था और बाद में गाय–भैंस के मूल्य के हिस्से लगा दिये जाते थे और आपसी समझौते से पशु मालिक या रक्षक के पा चला जाता था।

राज्य की ओर से राजकीय एवं निजी पशुओं के संरक्षण की पूरी व्यवस्था की जाती थी। सर्प तथा हिंसक जानवरों को पशुओं से दूर रखने के लिए उनकी गर्दनों में घंटियॉ तथा घंटें बॉधे जाते थे। इनकी आवाज से उनके चरने और घूमने के स्थान एवं गतिविधि का बोध होता रहता था।[52] पशुओं को बेचे जाने पर चौथाई पण गोअध्यक्ष के पास जमा कराना होता था। पशुओं की बिक्री पर पौन पण बिक्री कर देते थे। प्रत्येक गांव के सन्निकट राजकीय चरागाह होते थे जहॉ किराया देकर जनपद निवासी पशु चराते थे। यदि वे रात में भी वहीं विश्राम करते थे तो किराया अधिक देना पड़ता था।[53]

जो राजकर्मचारी गैरसरकारी पशुओं पर राजचिन्ह अंकित करके उन्हें राजकीय चरागाह में दाखिल कर देता था या राजकीय चिन्ह मिटाकर उन्हें निजी पशु की तरह चरागाह से बाहर लाता था, उसे कठोर दंड दिया जाता था। राजकीय चरागाहों के गोपालकों के लिए यह आवश्यक समझा जाता था कि वे प्रत्येक मरे हुए पशु की सूचना तुरन्त गोअध्यक्ष को दे। ऐसा न करने पर उनसे हर्जाना मांगा जाता था। इसे प्रमाणित करने के लिए उन्हें राजचिन्ह से अंकित गाय, भैंस और दूसरे पशुओं का चमड़ा पेश करना पड़ता था। बकरी तथा भेड़ अदि छोटे पशुओं के राजचिन्हित कान, घोड़े तथा ऊँट की राजचिन्हित पूँछ जमा कराने होते थे। मरे हुए पशु के बाल, मांस, पित्त, ऑत, दॉत,खुर और सींग पर राज्य का अधिकार माना जाता था।[54] अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि गाय और भैंस की भॉति बकरी तथा भेड़ का दूध एवं घी आम व्यवहार में लाया जाता था। गाय और भैंस, सांडों तथा भैंसों के साथ खिलवाड़ करना, उन्हें आपस में लड़ाकर मनोरंजन करना अपराध समझा जाता था। उनकी हत्या करने पर उत्तम साहस का दण्ड दिया जाता था।

निष्कर्ष

मौर्यकाल में व्यापार एवं वाणिज्य अति प्रांरभिक अवस्था में होने के कारण समाज की जीविका के निर्णायक साधन नहीं थे। ऐसे समय में कृषि एवं पशुपालन को राजकीय संरक्षण में विकसित किया गया। छोटे से छोटे एवं बड़े से बड़े कार्य में राजतंत्र सीधा एवं प्रत्यक्ष हाथ बंटाता था एवं उस पर नियंत्रण रखता था। परिणामस्वरूप आर्थिक जीवन में प्राकृतिक उत्पादन प्रणाली के संकुचित चौखटे से निकलकर उत्पादन एव वितरण के परिष्कृत नियमों से बंधने की शुरूआत हुई एवं आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ।

पाद टिप्पणी

1. *रोमिला थापर – अशोक और मौर्य साम्राज्य का पतन, ग्रंथ शिल्पी, 1977, पृ. 60.*
2. *सत्यकेतु विद्यालंकार– मौर्य साम्राज्य का इतिहास, श्री सरस्वती सदन नई दिल्ली, 2000, पृ. 333*
3. *परदेशापवाहनेन, कौटिलीयः अर्थशास्त्रम्, (पाण्डेय रामतेज शास्त्री), आर्यावर्त्त संस्कृति संस्थान दिल्ली, 2017, 2/1,पृ. 69*
4. *स्वदेशाभिष्यन्दवमनेनवा, कौटिलीयः अर्थशास्त्रम्, (पाण्डेय रामतेज शास्त्री), आर्यावर्त्त संस्कृति संस्थान दिल्ली, 2017, 2/1,पृ. 69*
5. *अध्यक्ष संख्ययिका दिभ्यो गोपस्थानिकानी कस्थ चिकित्साश्वदमक जंघाकरिकेभ्यश्च विक्रयाधानवर्णम्–कौटिलीयः अर्थशास्त्रम2/1, पृ.70*
6. *धान्य पशुहिरण्यैश्चैनाननुगृह्णीयात् तान्युनुसखेन दद्युः –कौटिलीयः अर्थशास्त्रम2/1, पृ.70,*
7. *कौटिलीयः अर्थशास्त्रम्, (पाण्डेय रामतेज शास्त्री), आर्यावर्त्त संस्कृति संस्थान दिल्ली, 2017, पृ. 74*
8. *कौटिलीयः अर्थशास्त्रम्, (पाण्डेय रामतेज शास्त्री), आर्यावर्त्त संस्कृति संस्थान दिल्ली, 2017, पृ. 89*
9. *कर्मोदक प्रमाणेन केदारं हैमनं ग्रैष्मिक वा सस्यं स्थापयेत् –कौटिलीयः अर्थशास्त्रम2/24, पृ.188*
10. *फेनाघातों वल्लीफलानां, परिवाहन्ताः पिप्पलीमृद्वीकेक्षूणां, कूपपर्यन्ताः शाकमूलानां हरणीपर्यन्ताः हरितकानां, पाल्योलपानां गन्धभैषज्योशीरहीरबेरपिण्डालुकादीनाम्, 2/24, पृ. 188*
11. *शालिब्रीहिकोद्रवतिलप्रियंगदारकवरकाः पूर्ववायाः। मुदमाष शैम्ब्या मध्यवापाः। कुसुम्भमसूरकुलुत्थयगवोधूमक लायातसीसर्वथाः पश्चाद्वापाः 2/24, पृ. 187*
12. *मेगास्थिनीज का भारत वर्णन (रामचन्द्र शुक्ल– अनुवादक), खण्डेलवाल पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2018, पृ. 19–20*
13. *कौटिल्य अर्थ शास्त्र– 2/15, पृ. 153*
14. *फणित गुडमत्स्यण्डिका खण्डशर्करा– कौ. अर्थ. 2/15, पृ. 153*
15. *इक्षुरसगुडमधुफाणितजाम्बवनपन सानामन्थतमो.... मासिकष्षाण्मासिक स्सांवत्सरिको वो। आम्रफलामलकावसुतः शुद्धों वा, कौटिल्य अर्थशास्त्र–2/15, पृ. 153*
16. *शाकतिनिशधन्वनार्जुनमधूकलितकसालशिंशपारिमेदराजादनशिरीषखदिरसरलतालसर्जा श्वकर्णसोमलवल्ककशामुप्रियक–धवादिः सारदारूवर्गः । कौटिल्य अर्थशास्त्र–2/17 पृ.161*
17. *बहुहलपारिकृष्टायां स्वभूमौ दासकर्मकरदण्डप्रतिकृर्तभिर्वापयेत– 2/24, पृ. 185*
18. *कर्षण यन्त्रोपकरणबलीवर्दैश्चैषामसंगेकारयेत– 2/24, पृ. 186*
19. *कारूभिश्च कर्मार कुट्टाकमेदकरज्जूवर्तकसर्पग्राहादिभिश्च– 2/24, पृ. 186*
20. *षण्डवाट गोपालदासकर्मकरेभ्यो यथापुरूषपरिवापं भक्तं कुर्यात, 2/24 पृ. 190*
21. *कर्मानुरूपं कारूभ्यो भक्त वेतनम् – 2/24, पृ. 190*

22. सीताध्यक्ष कृषितन्त्र शुल्व वृक्षायुर्वेदज्ञस्तज्ज्ञसखो वा 'सर्वधान्य पुष्पफल–शाककन्दमूलवल्लिक्य क्षौमकार्यासबीजानि यथाकालं गृहीयात्। – 2/24, पृ. 185
23. बहुहलपरिकष्टायां स्वभूमौ दासकर्मकरदण्डप्रतिकर्मकरदण्डप्रतिकर्तृभिर्वापयेत्। कर्षण यंत्रोपकरणबलीवर्दैश्चैषामसंग कारयेत्। – 2/24, पृ. 185–186
24. करदेभ्यः कृतक्षेत्राण्यैकपुरूषिकाणि प्रयच्छेत। अकृतानि कर्तृभ्यो नादेयात्। कौ. अ. 2/1– पृ. 70
25. अकृषता माच्छिद्यान्येभ्यः प्रयच्छेत्, ग्राम भृतक वैदेहा का वा कृषेयुः। अकृषन्तोऽपहीनं दद्युः कौ. अर्थ– 2/1, पृ. 70
26. स्व सेतुभ्यो हस्तप्रावर्तित ममुदक भागं पंचमं दद्युः। स्कन्धप्रावर्तिम चतुथम्। स्त्रोतोंयंत्रप्रावर्तिमं च तृतीयम्। पृ. 187–188
27. आचार्य दीपकर– कौटिल्यकालीन भारत, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृ. 136
28. तुषारपायनमुष्णशोषणं चासप्तरात्रादिति धान्य बीजानो, त्रिरात्रं पंचरात्रं वा कोशी धान्यानां, मधुघृतसूकरवसाभिः शकृद्युक्ताभिः काण्डबीजानां छेद लेपो मधुघृतेनकन्दानाम्। – 2/24/पृ. 189
29. कौटिल्य अर्थ शास्त्र– 2/24, पृ. 190
30. सेतुबंन्धः संस्यानां योनि है। नित्यानुष्को हि वर्षगुणलाभः सेतुवापेषु। कौटिल्य अर्थ शास्त्र–7/14, पृ. 496
31. हस्तप्रावर्तितममुदकभागं पंचम दद्युः। स्कन्धप्रावर्तिमं चतुथम्।स्त्रोतोयंत्रप्रावर्तिमं च तृतीयम। चतुर्थ नदीसरस्तटाककूपोद्घाटम। कौटिल्य अर्थ शास्त्र– 2/24, पृ. 187–188
32. श्रीराम गोयल– चन्द्रगुप्त मौर्य, कुसुमान्जलि प्रकाशन, मेरठ, 1987, पृ.126; डी.आर. भण्डारकर– अशोक, एस चन्द एण्ड कम्पनी, दिल्ली, 1960, पृ. 220
33. सेतुभ्यो मुंचतस्तोयमवारे षट्पणों दमः। वारे वा तोयमन्येषां प्रमाद्नोपरुन्धतः कौटिल्य अर्थ शास्त्र–3/9, पृ. 280
34. तट्राकसेतुबन्धानां नवप्रवर्तने पांचवार्षिकः परिहारः। भग्नोत्सृष्टानों चातुर्वार्षिकः। कौटिल्य अर्थ शास्त्र–3/9, पृ. 279–280
35. कौटिल्य अर्थ शास्त्र–2/24, पृ. 187
36. कौटिल्य अर्थ शास्त्र–3/9, पृ. 279
37. कोष्ठोगारे वर्षमानमरत्निमुखं कुण्ड स्थापयेत्। 2/5 पृ. 87
38. षोडशद्रोणं जांगलानां वर्षप्रमाण मध्यर्धमानूंपाना देश वापानामर्धत्रयोदशाश्मकाना त्रयोविंश तिरवन्तीनाममितम परान्तानां हैमन्यानः च कुल्या वापानां च कालतः। 2/24, पृ. 186
39. वर्षात्रिभागः पूर्वपश्चिममासयोः, दौ त्रिभागों मध्यमयोः सुषमानुरूपम् – 2/24, पृ. 186
40. निष्पन्न सस्यमन्यविषयं वा सजनपदो ययात। समुद्रसरस्तटाकानि वा संश्रयेत। धान्यशाकमूलफलावापान सेतुषु कुर्वीत। मृगपशुपक्षिव्यालमत्स्यारम्भान् वा। कौटिल्य अर्थ शास्त्र–4/3 पृ. 339
41. उच्चैर्धान्यस्य निक्षपों मूताः क्षारस्य संहताः । मृत्काष्ठकोष्ठाः स्नेहस्य पृथिवी लवणस्य च।। कौटिल्य अर्थ शास्त्र–2/15 पृ. 157
42. ऋत्विगाचार्यपुरोहितश्रोत्रियेभ्यो ब्रह्मदेयान्यदण्डकरण्याभिरूपदायकानि प्रयच्छेत। कौटिल्य अर्थ शास्त्र–2/1 पृ. 70
43. सत्यकेतु विद्यालंकार– मौर्य साम्राज्य का इतिहास, श्री सरस्वती सदन नई दिल्ली, 2000, पृ. 270
44. सत्यकेतु विद्यालंकार– मौर्य साम्राज्य का इतिहास, श्री सरस्वती सदन नई दिल्ली, 2000, पृ. 272
45. पुष्पलवाटषण्डकेदारमूलवापाः सेतुः । कौटिल्य अर्थ शास्त्र– 2/6 पृ. 90
46. गोपालकपिण्डारकदोहकमन्थकलुब्धकताः शतशत धेनुनांहिरण्यभृताःपालयेयुः। कौटिल्य अर्थ शास्त्र– 2/29 पृ. 207
47. जरद्गुधेनुगर्भिणीपष्ठौहीवत्सतरीणां समविभागं रूपशतमेकः पालयेत। घतस्याष्टौ वारकान पणिकं पुच्छं अंकचर्म च वार्षिक दद्यादिति करप्रतिकरः। कौटिल्य अर्थ शास्त्र– 2/29 पृ. 208
48. व्यधितान्यंगानन्यदोहीदुर्दोहापुत्रघ्नीनां च समविभागं रूपशतं पालयन्तस्तज्जातिकं भागं दद्युरिति भग्नोत्सृष्टकम् । कौटिल्य अर्थ शास्त्र– 2/29 पृ. 208
49. परचक्राटवीभयादनुप्रविष्टानां पशूनां पालनधर्मेण दशभागं दद्युरिति भागानुप्रविष्टकम्। कौटिल्य अर्थ शास्त्र– 2/29 पृ. 208
50. अंक चिह्न वर्ण श्रृंगान्तरं च लक्षणम। एवमुपजा निबंन्धयेदिति व्रजपर्यग्रम्। कौटिल्य अर्थ शास्त्र– 2/29 पृ. 208
51. चोरहृतमन्ययूथप्रविष्टमवलीनं वा नष्टम् । कौटिल्य अर्थ शास्त्र– 2/29 पृ. 208
52. कौटिल्य अर्थ शास्त्र– 2/29 पृ. 209
53. कौटिल्य अर्थ शास्त्र– 2/29 पृ. 210
54. आचार्य दीपंकर– कौटल्यकालीन भारत, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1989, पृ. 146
55. कारणमतस्यांकचर्म गोमहिषस्य कर्णल क्षणमजाविकानां पुच्छमंकचर्म चाश्वखरोष्ट्राणा बाल कर्म बस्ति पित्तस्नायुदन्तखुर श्रृंगास्थीनि चाहरेयुः ।कौटिल्य अर्थ शास्त्र– 2/29 पृ. 210